हिंदी की साहित्यिक सक्रियता, 2018

माधव हाड़ा

वर्ष 2018 के दौरान हुई किताबों की आमद और उन पर हुई चर्चा से लगता है कि हिंदी की रचनात्मक सक्रियता का चरित्र बहुत तेजी से बदल रहा है। संचार क्रांति, मीड़िया विस्फोट, ग्लॉबलाइजेशन और औपनिवेशिक पहचान से मुक्त होने के बढते आग्रह से उसमें कई बदलाव आ रहे हैं। एक तो यह कथा-कविता के सीमित दायरे से बाहर निकल रही है, दूसरे, इसमें विधायी अनुशासन का आग्रह कम हो रहा और तीसरे, इसका अंग्रेजी सहित अन्य भारतीय भाषाओं के साथ मेलजोल बढ़ रहा है।

अभी कुछ समय पहले तक हिंदी की रचनात्मक सक्रियता पर कथा-कविता केन्द्रित होने की तोहमत आम थी, लेकिन अब ऐसा नहीं है। इसमें कथेतर और विचार का आग्रह तेजी से बढ़ रहा है। दरअसल भारतीय जनसाधारण के नजरिये में इधर कल्पना की तुलना में युक्ति और तर्क हिस्सेदारी बढ़ गई है और इसका प्रभाव हिंदी की रचनात्मकता पर भी है। इसमें अब कल्पना निर्भर कविता-कथा की जगह युक्ति और तर्क के हिसाब से ठीक-ठाक कथेतर रचनाओं का बोलबाला है। इस वर्ष प्रकाशित-चर्चित अधिकांश रचनाएँ संस्मरण, यात्रावृत्त, डायरी और साक्षात्कार की हैं। खास बात यह है कि कई स्थापित कवि-कथाकरों ने कथेतर का रुख कर लिया है। कथाकार असग़र वजाहत और कवि ऋतुराज के यात्रावृत्त क्रमशः 'अतीत का दरवाजा' और 'चीन की डायरी' तथा कवि मलय का संस्मरण 'यादों की अनन्यता' इसके उदाहरण हैं।

हिंदी की शुरुआती, कथेतर रचनात्मक सक्रियता में औपनिवेशिक विधायी पहचानों का आग्रह बहुत था। थोड़ा-सा भी इधर-उधर होने पर लोग नाक-भौं सिकोड़ते थे, लेकिन अब यह अनुशासन नहीं के बराबर रह गया है। लोग अपनी जातीय रचनात्मक जरूरतों के तहत खूब इधर-उधर हो रहे नए अनुशासन गढ़ रहे हैं। संस्मरण, आख्यान, इतिहास, आलोचना, आत्मकथा आदि अनुशासनों में अंतर्क्रिया बहुत बढ़ गयी है। अशोककुमार पांडेय की चर्चित किताब 'कश्मीरनामा' में आख्यान, इतिहास, शोध, आलोचना आदि सब एक साथ हैं। रामशरण जोशी की किताब 'मैं बोनसाई अपने समय में' भी आत्मकथा, संस्मरण, इतिहास, पत्रकारिता आदि घुलमिल गए हैं। नामवर सिंह की 'द्वाभा' में भी संस्मरण और आलोचना का मेलजोल है। खास बात यह है कि युवा हस्तक्षेप भी इस वर्ष कथेतर में सबसे अधिक है। अजय सोड़ानी का यात्रावृत्त 'दरकते हिमालय में दरबदर'

इस वर्ष चर्चा में रहा। इसी तरह श्रीकांत दुबे के यात्रावृत्त ‘ मेक्सिको : एक घर परदेश में’ की भी खूब सराहना हुई। संस्मरणों की आमद भी हिंदी में बढ़ रही है। इस वर्ष चर्चित संस्मरणकार कांतिकुमार जैन की ‘कवियों की याद में’ शीर्षक पुस्तक आई। ललितमोहन रयाल की ‘खड़कमाफी की स्मृतियों में’ ने भी लोगों का ध्यान खींचा। डायरी हिंदी में कम लिखी जाती है, लेकिन इस वर्ष इस विधा की दो रचनाओं- कृष्ण बलदेव वैद की ‘अब्र क्या चीज है? हवा क्या है?” और शिवरतन थानवी की “जगदर्शन का मेला’ को लोगों ने गहरी दिलचस्पी के साथ पढ़ा। साक्षात्कार हिंदी में पहले भी होते रहे हैं, लेकिन इस वर्ष रंगकर्मी रतन थियम और कवि कमलेश से उदयन वाजपेयी के साक्षात्कारों ने अपनी अलग पहचान बनाई। निबंध जैसी हाशिये की विधा में ज्ञानपीठ ने अष्टभुजा शुक्ल की सर्वथा नयी किताब का प्रकाशन किया।

हिंदी आलोचना अब कुछ हद तक तत्काल समीक्षा संस्कृति से उबरकर अपनी विरासत की पहचान और मूल्यांकन की तरफ झुकती हुई दिखाई पड़ रही है। स्थापित आलोचकों के साथ युवाओं की सक्रियता भी इसमें बढ़ी है। नामवर सिंह की इस वर्ष चार पुस्तकें- ‘आलोचना और संवाद’, ‘पूर्वरंग’, ‘छायावाद’ और ‘रामविलास शर्मा’ आईं। इनमें उनके अप्रकाशित लेखों, संवादों, टिप्पणियों लेखों के संकलन हैं। इनसे एक आलोचक के बनने-बढ़ने की प्रक्रिया को समझने में मदद मिलेगी। रविभूषण की किताब ‘रामविलास शर्मा का महत्त्व’ और कीर्तिशेष कुंवरनारायण पर एकाग्र ‘अन्वय’ और ‘अन्विति’ नामक किताबें भी इस वर्ष चर्चा में रहीं। इस वर्ष कुछ युवा आलोचकों ने मुक्तिबोध को अपनी दिलचस्पी के केंद्र में रखकर प्रभावी हस्तक्षेप किया। अमिताभ राय की ‘सभ्यता की यात्रा:अंधेरे में’ और विनय विश्वास की 'ऐंद्रिकता और मुक्तिबोध’ नामक किताबें मुक्तिबोध को समझने-पहचानने के नए उपक्रम हैं। इसी तरह फणीश्वरनाथ रेणु के कथाकार को नयी तरह से जानने-समझने का प्रयास मृत्युंजय पांडेय की किताब ‘रेणु का भारत में’ है। इस वर्ष प्रकाशित शीतांशु की ‘कंपनी राज और हिंदी’, नीरज खरे की ‘आलोचना के रंग’ और राहुलसिंह ‘अंतर्कथाओं के आईने में उपन्यास’ भी आलोचना की महत्वपूर्ण किताबें हैं।

यह आश्चर्यजनक है कि कथा-कविता के क्षेत्र में हिंदी की रचनात्मक सक्रियता सीमित हुई है। अभी कुछ समय पहले तक हिंदी में हाथ उठाकर कथा-कविता में नए सरोकार और मुहावरे की घोषणा करनेवालों की भीड़ रहती थी, लेकिन अब ऐसा नहीं हो रहा है। खासतौर पर युवाओं में कविता के लिए उत्साह कम हुआ है। कहानी-उपन्यास में भी युवाओं की आमद इस वर्ष नगण्य ही है। कुँवरनारायण के ‘सब इतना असमाप्त’ और केदारनाथसिंह के ‘मतदान केंद्र पर झपकी’

नामक संकलन उनके मरणोपरांत इस वर्ष आए। लीलाधर मंडलोई का 'जलावतन', पवन करण का 'स्त्री शतक', गगन गिल का 'मैं जब आई बाहर' और सुमन केशरी का 'पिरामड़ों की तह में' भी इस वर्ष की उल्लेखनीय काव्य रचनाएं हैं। इनके संबंध में खास बात यह है प्रतिरोध अब भी इनका मुख्य स्वर है। हिंदी कविता के तीन शीर्ष कवियों के संचयन- नंदकिशोर आचार्य का 'अपराह्न', सौमित्र मोहन का 'आधा दिखता वह आदमी' और वीरेन डंगवाल का 'कविता वीरेन' इस वर्ष प्रकाशित हुए। सुरेश सलित के संपादन में हिंदी की प्रतिनिधि कविताओं का संकलन 'आधी सदी' भी इसी वर्ष आया।

हिंदी में कहानी-उपन्यास के क्षेत्र में भी माहौल बहुत उत्साह का नहीं है। इसमें सरोकार और मुहावरे के मामले में नवाचार कम हो रहे हैं। उपन्यास के क्षेत्र में तीनों उल्लेखनीय रचनाएं- गीतांजलि श्री की 'रेत समाधि', ज्ञान चतुर्वेदी की 'पागलखाना' और अलका सरावगी की 'एक सच्ची झूठी गाथा' स्थापित कथाकारों की हैं। इनके साथ वीरेंद्र सारंग के 'बाँझ सपूती' और शैलेन्द्र सागर के 'ये इशक नहीं आसां' कोभी याद किया जाना चाहिए। अलबत्ता कहानी के क्षेत्र में उपन्यास की तुलना कुछ अधिक सक्रियता है। असग़र वजाहत का 'भीड़तंत्र', गौरव सोलंकी का 'ग्यारहवीं ए के लड़के', क्षमा शर्मा का 'बात अभी खत्म नहीं हुई' और ममता सिंह का 'राग मारवा' संकलन इस वर्ष चर्चा में रहे। कथाकार असग़र वजाहत का पल्लव द्वारा संपादित रचना संचयन भी इसी वर्ष की उपलब्धि माना जाएगा।

अभी कुछ दशकों पहले तक हिंदी में अस्मितायी भाषिक संकीर्णता खूब थी। इसमें अंग्रेजी और शेष भारतीय भाषाओं के साथ संवाद को लेकर लोगों का नजरिया परहेज का था, लेकिन अब माहौल बदल रहा। अब कमोबेश रवैया मेलजोल का है। इसका सबूत यह है कि ज्ञानपीठ सम्मान के अंग्रेजी के खाते में जाने की हिंदी समाज में प्रतिक्रिया तो हुई, लेकिन इसको कोई व्यापक स्वीकृति नहीं मिली। हिंदी में अंग़ेजी सहित शेष भारतीय भाषाओं के अनुवादों का सिलसिला तेज हुआ है। इस वर्ष आए विवेक शानभाग का अजयसिंह का 'घाचर-घोचर' (कन्नड़), सादिक का गालिब का 'चिराग ए दर' (उर्दू), प्रयाग शुक्ल का शंख घोष का 'मेघ जैसा मनुष्य' (बंगला), मोनिकासिंह का पाट्रिक मोदियानो का 'गुलामी से परे' (अंगेजी) आदि अनुवाद महत्त्वपूर्ण हैं। भारतीय अंगेजी लेखकों की किताबें भी अब तत्काल हिंदी में आने लगी हैं। इस वर्ष ऐसी कई किताबें आईं, जिनमें शशि थरूर की 'मैं हिंदू क्यों हूं' प्रमुख है।

साहित्यिक पत्रकारिता के लिहाज से यह वर्ष उर्वर रहा। 'तद्भव' और 'बनास जन' ने हर वर्ष की तरह इस वर्ष भी संग्रहणीय अंक निकाले। हंस, कथादेश,वागर्थ, नया ज्ञानोदय, दोआबा, अक्सर आदि पत्रिकाएँ नियमित रहीं। लघु पत्रिकाओं ने इस वर्ष सज्जाद जहीर, शिवप्रसाद सिंह, अमृतलाल नागर, अमरकांत, ज्ञान चतुर्वेदी, श्रीपत राय, चंद्रकांत देवताले आदि पर विशेषांक निकाले। हिंदी में सांस्थानिक साहित्यिक आयोजन कई होते हैं, लेकिन इस वर्ष रजा फाउंडेशन ने व्यापक सहभागिता वाले कवि समवाय, युवा आदि सुरुचिपूर्ण आयोजन कर अपनी अलग पहचान बनाई।

साहित्य के बदलने की प्रक्रिया निरंतर और स्वाभाविक है। पहले परिवर्तन धीमी गति से होते थे और उनकी पहचान भी देर से होती थी, लेकिन अब परिवर्तन की गति तेज है और साहित्य की नागरिकता का दायरा बड़ा होने के कारण इनकी पहचान भी तत्काल होती है। पाठकों के नजरिये में हुए बदलाव के कारण आगे हिंदी में नए कथेतर साहित्य रूपों की जरूरत बढ़ती जाएगी। कथा-कविता भी इसमें रहेंगे, लेकिन ये बहुत बदल जाएंगे।